International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 3; Issue 10; October 2016; Page No. 208-213

जैन सचित्र–पाण्डुलिपियों का ऐतिहासिक एवं कलात्मक महत्त्व

डॉ. बीना जैन

सह–आचार्य, चित्रकला विभाग, रा.वि.वि., जयपुर, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

भारतीय चित्रकला के व्यापक परिप्रेक्ष्य में जैन चित्रकला का एक निजी वैशिष्ट्य है। इसके प्राचीन अवशेष अजंता, बाघ, बादामी व एलोरा आदि की गुफाओं में भित्तियों और छतों के अधस्तल पर किए गए अंकन के रूप में तो मिलते ही हैं, ताड़पत्रीय एवं कागज की हस्तलिखित पाण्डुलिपियों, पोथियों में यह कला विपुल मात्रा में उपलब्ध है – परिमाण में भी और गुणवत्ता में भी। इनके अवलोकन से यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि जैन चित्रकला मात्र कला के लिए नहीं थी, अपितु कला–रसिकों के जीवन का एक अंग भी बन चुकी थी। कला में जब दर्शन का पुट दे दिया जाता है तो अध्यात्म की छटा बिखरने लगती है। ऐसा ही कुछ हमारे प्राचीन जैन मनीषी साहित्यकारों और कलाकारों ने किया कि जीवन–दर्शन की वह छटा छलक उठी और ताड़पत्रों और पोथियों के पन्नों पर अपनी अमिट छाप छोड़ गई।

जैन चित्रकला से सम्बन्धित पाण्डुलिपियों पर सर्वप्रथम 1913 ई. में डब्ल्यु हटमैन का 'बैसलन आरकाइब्ज' में 'मिनिएचरेन जम जिनचरित' नामक लेख प्रकाशित हुआ[1], जो कि बैरलिन में स्थित दो कल्पसूत्रों पर आधारित तथा चित्रित था। एक वर्ष पश्चात् ही 1914 ई. में नाहर एण्ड घोष द्वारा 'जैन ऐपीटोम ऑफ जैनिज्म' प्रकाशित किया गया[2]। इसी वर्ष डॉ. आनन्द कुमार स्वामी की दृष्टि भी जैन चित्रों की ओर आकृष्ट हुई। उन्होंने एक लेख[3] निजी संग्रह की तीन पाण्डुलिपियों की महत्ता तथा विशेषताओं को अंकित करते हुए लिखा है, जिसके अन्तर्गत एक पाण्डुलिपि 'कल्पसूत्र' 1497 ई. की थी। अन्य दो पाण्डुलिपियाँ 'कालकाचार्या कथा' की थी।

1922 ई. में प्रकाशित जे.एस. कुदालकर के लेख[4] द्वारा कला–रसिक शोधकर्त्ताओं को पाटन के विभिन्न शास्त्र–भण्डारों तथा पुस्तकालयों आदि में स्थित असंख्या पाण्डुलिपियों की सूची दी गई थी। इस क्षेत्र में आगामी शोध–खोज इसका ज्वलन्त प्रमाण है। इसके पश्चात जैन कला के मुख्य शोधकर्त्ता डॉ. कुमार स्वामी की 1923 ई. में पुनः एक छोटी–सी पुस्तक 'इण्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट' प्रकाशित हुई। 1924 ई. में डॉ. कुमार स्वामी ने 'दी कैटेलॉग ऑफ दी इण्डियन कलैक्शन इन दी म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स', वोस्टन के चतुर्थ भाग में प्राचीन जैन चित्रकला के उद्गम, उत्कर्ष तथा समापन को सुव्यवस्थित रूप में वर्गीकृत किया। जैन चित्रकला के महत्त्व का बोध कराते हुए उद्घोषित किया कि भारतीय चित्रकला की लुप्त कड़ियाँ जैन चित्रकला के रूप में सुरक्षित हैं।

प्रसिद्ध विद्वान अजित घोष ने 1927 ई. में 'दी डेवलपमेण्ट ऑफ जैन पेंटिंग' नामक लेख में प्राचीन जैन चित्रकला की कुछ अन्य पाण्डुलिपियों का साहित्यिक एवं कालक्रमिक दिग्दर्शन कराकर जैन चित्रकला की प्रगति को नई चेतना तथा स्फूर्ति प्रदान की। 1928 ई. में नारमन ब्राउन द्वारा अन्वेषित एवं श्वेताम्बर धर्म से सम्बन्धित पुरानी पाण्डुलिपियों के चित्रों को वैज्ञानिक ढंग से प्रकाशित किया गया।

कालान्तर में इस क्षेत्र में कार्यरत होकर मुनिश्री पुण्यविजय, ओ.सी. गांगुली, साराभाई मणिलाल नवाब, यू.पी. शाह, एम.आर. मजूमदार व हरमन गोयट्ज आदि विद्वानों ने गुजरात तथा राजपूताना आदि अनेक प्रदेशों में भ्रमण कर विभिन्न पाण्डुलिपियों व पट्टिकाएँ आदि अमूल्य सामग्री की शोध–खोज की तथा अनेक शोध–पत्र प्रकाशित कराकर चित्रकला के महत्त्वपूर्ण अध्यायों को उद्घाटित किया। किन्तु श्री नवाब के अन्वेषण जैन चित्रकला के लिए अनुपम देन सिद्ध हुए। उन्होंने गुजरात प्रान्त के सभी जैन शास्त्र–भण्डार तथा निजी संग्रहालयों का निरीक्षण कर श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय से सम्बन्धित पाण्डुलिपियों आदि की खोज की एवं विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की जिसके परिणामस्वरूप चित्रों के नन्दतिक पक्ष के वर्णन और मूल्यांकन को प्रथम बार महत्त्व प्राप्त हुआ। कुछ वर्ष पूर्व डॉ. श्रीमती सरयू दोषी ने अपने शोध ग्रन्थ में राजस्थान एवं गुजरात के विभिन्न शास्त्र भण्डारों से प्राप्त दिगम्बर जैन पाण्डुलिपि के चित्रों का विश्लेषण एवं प्रतिपादन किया है।

जैन समाज में लेखन प्रणाली का प्रयोग बहुत प्राचीन पाया जाता है। तथापि डेढ़–दो हजार वर्ष से पूर्व के लिखित ग्रन्थों के स्पष्ट उदाहरण प्राप्त न होने का एक बड़ा कारण यह हुआ कि विद्या प्रचार का कार्य प्राचीनकाल में मुनियों द्वारा विशेष रूप से होता था। अतः जैन आगमों का ज्ञान जैन साधुओं की स्मृति में ही सुरक्षित रहा और परम्परा में गुरुओं द्वारा शिष्यों का मौलिक रूप से प्रदान किया जाता रहा। लेकिन दुर्भिक्षों और संक्रामक रोगों से जब ये आत्मज्ञानी कालग्रस्त होते तब इन धार्मिक आगमों का ज्ञान भी उन्हीं के साथ अवश्य क्षीण होता जाता। कालान्तर में जैन आत्मज्ञान की शिक्षाओं का प्रवाह इतना टूटने लगा कि उसे निरन्तर बनाये रखना और उसके मूल–पाठ को भ्रष्ट होने से बचाये रखना असम्भव हो गया।[5] फलतः जैन समुदाय ने अपनी पवित्र ज्ञान–निधि की सुरक्षा के लिए अनेक प्रकार के प्रयास किये। पाटिलीपुत्र में जैन साधुओं की संगीति आयोजित की गई। जहाँ जैन सिद्धान्त साहित्य को क्रमबद्ध रूप से संचित कर लिपिबद्ध किया गया।[6]

वीरनिर्वाण की 10वीं शताब्दी में आकर पुनः आगमों की अस्त–व्यस्त अवस्था हो गई थी। अतएवं मथुरा में स्कंदिल आचार्य और उसके कुछ पश्चात् वलभी में देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में आगमों की वाचनाएँ की गई। 'पाटलिपुत्रीय व माथुरीय वाचनाओं के ग्रन्थ तो अब नहीं मिलते, किन्तु वलभी वाचना द्वारा संकलित आगमों की प्रतियाँ तब से निरन्तर ताड़पत्र और तत्पश्चात् कागजों पर उत्तरोत्तर सुन्दर कलापूर्ण रीति से लिखित मिलती है और वे जैन लिपिकला के इतिहास के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं।'[7]

जैन मन्दिरों में भित्ति–चित्रों की कला का विकास 11वीं शताब्दी तक विशेष रूप से पाया जाता है। तत्पश्चात् चित्रकला का आधार ताड़पत्र बना। भित्ति–चित्रों की अपेक्षा यद्यपि यह कार्य सहज था तथापि लालित्य व स्थायित्व की दृष्टि से भित्ति–चित्रों की बराबरी नहीं कर सका। ताड़पत्रों की सचित्र पाण्डुलिपियाँ पूर्वी भारत में बौद्ध धर्म की महायान शाखा से सम्बन्धित है। जबकि पश्चिमी भारत से प्राप्त चित्रित पाण्डुलिपियाँ मुख्यतः जैनधर्म से सम्बन्धित है। अतः सम्भव है कि जैन ग्रन्थों को चित्रित करने का विचार धर्म शासकों द्वारा बौद्ध–धर्मी ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों से लिया गया हो।[8] किन्तु सामान्य रूप से पूर्वी भारत की सचित्र पाण्डुलिपियों से आकार आदि में साम्य रखते हुए भी चित्रण में महत्त्वपूर्ण अन्तर परिलक्षित होता

है। पश्चिम भारतीय स्कूल के चित्र सामान्य, रूपहीन व उनकी सुलेखता अपेक्षाकृत निम्नकोटि की है। उनके सूक्ष्म अवलोकन से भी ज्ञात होता है कि अस्पष्ट मान चित्रावली कोणिक रेखाओं का प्रयोग एवं मानवाकृतियों का रूढ़िगत रेखांकन होने के कारण चित्रांकन सुडौल, सजीव व स्पष्ट उभार लिए नहीं होता था। तथापि ये कलाकृतियाँ आकर्षक, संग्रहणीय तथा शोध का उत्कृष्ट विषय हैं। ग्रन्थ–लेखन के साथ सन्दर्भ संगत चित्रों के अंकन से एक ओर जैन पाण्डुलिपियों की शोभा बहुगुणित हुई, वहाँ दूसरी ओर कथावस्तु रुचिकर व सरल बोधगम्य हो गई। इसके अतिरिक्त इस प्रकार का चित्रांकन ग्रन्थ–लेखकों अथवा लिपिकों की चित्रकला के प्रति रुचि का भी परिचायक सिद्ध हुआ है।

सचित्र पाण्डुलिपियों के क्रम में 'इॅन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना'[9] में उल्लेख मिलता है कि पुस्तकों के पाठ को विविध चित्राकृतियों से सजाया गया हो तथा सजावट में ग्रंथ के प्रथम अक्षर को विशद् आकार देते हुये आलंकारिक बनाया गया हो, विषयानुरूप चित्रों का संयोजन स्थापित किया गया हो, ऐसी पुस्तक को हस्तलिखित पाण्डुलिपि या सचित्र पाण्डुलिपि की संज्ञा दी जा सकती है। ग्रंथों के लेखन की पद्धति आकार–प्रकार और लेखन सौन्दर्य में भी जैन लेखन कला का अपना विशिष्ट स्थान है। कुछ प्रतियाँ तो वास्तव में लेखन, चित्र और सौन्दर्य के लिये अनुपम है। आगम ग्रंथों के लेखन में सोने और चाँदी तक का प्रयोग किया गया है।

भारत में 'अपभ्रंश शैली' के चित्र जो 11वीं से 16वीं शताब्दी तक चित्रित हुए मुख्यतः हस्तलिखित ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। डॉ. रामनाथ के अनुसार ''ये चित्र जैन धर्म सम्बन्धी पाण्डुलिपियों में पत्र के बीच–बीच में छोड़े हुए चौकोर स्थानों में बने हुए मिलते है।''

सचित्र जैन पाण्डुलिपियों के रचनाकाल को डॉ. मोतीचन्द ने तीन भागों में विभक्त किया है।

ताड़पत्र काल – 1100–1400 ई.
कागज काल – 1400–1600 ई.
उत्तर काल – 16वीं शताब्दी के पश्चात्

ताड़पत्रीय परम्परा एवं चित्रगत वैषिष्ट्य

चित्रगत शैली के आधार पर पश्चिम भारतीय स्कूल की ताड़पत्रीय सचित्र पाण्डुलिपियों का विभाजन दो वर्गों में किया गया है–प्रथम वर्ग (1100–1350 ई.) और द्वितीय वर्ग (1350 – 1450 ई.)

प्रथम वर्ग (1100–1350 ई.) इसके अन्तर्गत वे पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनका निर्माण गुजरात में सोलंकी राजाओं के संरक्षण में हुआ था।[10] गुजरात की प्राचीन राजधानी पाटन थी, जिसे 'अनहिलवाड़ा' भी कहा जाता था। डॉ. कुमार स्वामी तथा मेहता ने ताड़पत्र पर चित्रित प्राचीनतम पाण्डुलिपि कल्पसूत्र को माना है। इसका रचनाकाल 1237 ई. के लगभग निश्चित होता है।[11] डॉ. गोयट्ज के मतानुसार सबसे प्राचीन चित्रित कृति ताड़पत्र पर अंकित 'निशीथ–चूर्णि' है, जिसकी रचना सिद्धराज जयसिंह के राज्यकाल में 1100 ई. में हुई थी। यह पाण्डुलिपि पाटन के जैन भण्डार में स्थित हैं। इसमें चित्रों के नाम पर कुछ बेल–बूटे एवं कुछ पशु–आकृतियाँ हैं। डॉ. रामनाथ ने पाटन भण्डार में सुरक्षित 'भगवती सूत्र' का उल्लेख किया है, जो कि 1062 ई. की है। किन्तु इसमें मात्र अलंकरण है, चित्र नहीं हैं।[12]

इसके अतिरिक्त श्री खण्डालावाला तथा डॉ. सरयू दोशी ने इससे भी पूर्व 1060 ई. की 'ओघ–निर्युक्ति' एवं 'दश–वैकालिक–टीका' नामक दो ताड़पत्रीय ग्रन्थों का उल्लेख किया है।[13] ये भी इस समय जैसलमेर के जैन भण्डार में स्थित हैं। ओघ–निर्युक्ति के अन्तिम चित्रों में श्री का एक चित्र, कामदेव द्वारा बाण छोड़े जाने का एक संजीव चित्र हाथियों के सुदक्षतापूर्ण अंकित कुछ चित्र हैं। (चित्र–1) तत्पश्चात् मठ नियमों पर आधारित 'पिण्ड–नियुक्ति' नामक पुस्तक का उल्लेख किया हो, जिसमें मात्र एक हाथी का चित्रांकन है।

ताड़पत्रीय पाण्डुलियों के अन्तर्गत 'षट्–खण्डागम' (1112 ई.) तथा 'महा–बन्ध' (1112–20 ई.) और 'कषाय–पाहुड–इन' आरम्भिक दिगम्बर जैन पाण्डुलिपियों का भी उल्लेख मिलता है जो कर्नाटक स्थित मूडबिद्री के जैन सिद्धान्त–बसदि के संग्रह में सुरिक्षत हैं।[14] ये कर्म–सिद्धान्त से सम्बन्धित एवं मूल प्राकृत भाषा के ग्रन्थ हैं। इन पाण्डुलिपियों में चित्रों की संख्या अत्यन्त सीमित है। षट्–खण्डागम में दो महा–बन्ध में सात तथा कषाय–पाहुड में मात्र चौदह चित्र हैं। इन सभी पाण्डुलिपियों के चित्रों में ज्यामितीय अंकन अथवा पत्र–पुष्पों की पट्टिकाएँ युक्त आलंकारिक पदक तथा देवी–देवताओं, साधुओं, पाण्डुलिपियों के दानदाताओं अथवा उपासकों के चित्र अंकित हैं।

सन् 1127 ई. में रचित 'ज्ञान–सूत्र' की एक पाण्डुलिपि खम्भात स्थित शान्तिनाथ–मन्दिर के भण्डार में है। जिसमें मात्र दो चित्र हैं। एक चित्र में त्रिभंग मुद्रा में सरस्वती की आकर्षक आकृति है। देवी चतुर्भुज है। ऊपर के दोनों हाथों में कमल पुष्प तथा निचले हाथों में अक्षमाला व पुस्तक है। समीप में एक हंस व उपासना की मुद्रा में दो साधु भी चित्रित हैं। (चित्र–2) इस पाण्डुलिपि के बाद 'दश–वैकालिक–लघुवृति' (1143 ई.) का स्थान आता है। इसमें मात्र एक ही चित्र है जिसमें दो साधु एवं एक श्रावक का चित्र अंकित है। इसी भण्डार में 1241 ई. की लिपिबद्ध 'नेमिनाथ–चरित' नामक एक पाण्डुलिपि है, जिसमें पद्मासीन अंबिका के एक आकर्षक चित्र सहित चार अन्य चित्र हैं।[15]

म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स, बोस्टन में संगृहीत, मेवाड़ में अनूदित की गई 1260 ई. की एक पाण्डुलिपि 'सावग–पाडिक्कमण–सुत्त–चुण्णि' है, जिसमें केवल छः पुस्तक–चित्र हैं। इन आरम्भिक ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों में तो चित्रों की संख्या सामान्यतः बहुत कम है लेकिन 1288 ई. की 'सबाहु–कथा' (संघवी भण्डार, पाटन में सुरक्षित) पाण्डुलिपि में तेईस चित्र हैं। इसमें नेमिनाथ के जीवन की घटनाओं का चित्रांकन है। इनमें चट्टानों, वृक्षों और जंगल के पशुओं को प्रकृति–चित्रण के अन्तर्गत दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त बाद में की गई खोज के आधार पर डॉ. रामनाथ ने 'अंगसूत्र', 'कथासरितसागर' व 'त्रिषष्ठिशालाकापुरुषचरित' आदि ग्रन्थों का रचनाकाल भी उपर्युक्त प्रथम वर्ग की अवधि के अन्तर्गत ही निर्धारित किया है।[16]

द्वितीय वर्ग (1350–1450 ई.) स्थूल रूप से इसका प्रारम्भ गुजरात प्रान्त में मुगल शक्ति की स्थापना से सम्बद्ध किया जा सकता है। कोई भी पाण्डुलिपि 1370 ई. से पूर्व की अवधि की उपलब्ध नहीं है। 1427 ई. की एक पाण्डुलिपि इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लंदन में स्थित होने का वर्णन मिलता है।[17]

इस वर्ग के चित्रों में तकनीकी तथा सौन्दर्यात्मक प्रगति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। कथाएँ अधिकतर तीर्थंकर तथा देवी–देवताओं के जीवन से सम्बन्धित हैं। रेखांकन में लय, सोने और चाँदी के बहुमूल्य रंगों का अधिकाधिक उपयोग, महीन रेखाओं का सौन्दर्य तथा धर्म एवं वैराग्य से ओतप्रोत चित्रों द्वारा कला और माधुर्य का उत्तम दिग्दर्शन, जैन कला के पूर्वनिर्मित चित्रों की अपेक्षा उक्त चित्रों के प्रस्तुतीकरण की यह सम्पूर्ण प्रगति मुगल कला से सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण ही प्रतीत होती है।

कागदीय परम्परा एवं चित्रगत वैषिष्ट्य

ताड़पत्रीय चित्र–परम्परा के पश्चात् हम ऐसे युग में पहुँचते हैं जब भारत में ताड़पत्रों के स्थान पर कागज का प्रयोग होने लगा था। कागज यद्यपि भारत में बहुत पहले आ चुका था, किन्तु ग्रन्थ–निर्माण कार्य में कागज का उपयोग 14वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ ऐसा माना जाता है। दुर्भाग्य है कि कागज की प्राचीन

पाण्डुलिपियाँ भारत में अधिक मात्रा में प्राप्त नहीं होतीं। उनमें से कुछ पाण्डुलिपियाँ तो अत्यधिक सम्पन्न है। जो कि किनारों अर्थात् हाशियों पर सुन्दर अलंकरण के साथ ही स्वर्णाक्षरों से लिखी हुई हैं। अधिकतर चित्रों में नीले और सुनहरे रंग का प्रयोग किया गया है। यह कदाचित् फारसवासियों से सम्बन्धों का प्रभाव था।

कागदीय पाण्डुलिपियों के अन्तर्गत यू.पी. शाह ने आरम्भिक चित्रित पाण्डुलिपि 1346 ई. की 'कल्पसूत्र' एवं 'कालकाचार्यकथा' को माना है[18], किन्तु मोतीचन्द्र ने शैलीगत आधार पर इसे 15वीं शताब्दी की पाण्डुलिपि माना है।

इस प्रकार विभिन्न लेखों के आधार पर प्राचीनतम् हस्तलिखित चित्रित पाण्डुलिपि 1366 ई. की 'कालकाचार्य–कथा' निश्चित होती है। यह पाण्डुलिपि प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, मुम्बई में सुरक्षित है। इसमें मात्र तीन चित्र हैं जिनमें एक देवता को बैठे हुए सम्मुख मुद्रा में अंकित किया गया है। 1367 ई. की एक अन्य पाण्डुलिपि का उल्लेख मिलता है, जो मुनि जिनविजय जी के अधिकार में थी। मुनि जिनविजय जी इसे कागदीय पाण्डुलिपियों में प्राचीनतम मानते थे। इसमें मात्र आठ चित्र 7.5ग5 सेण्टीमीटर आकार के हैं। (चित्र–3) 1370 ई. की 'कल्पसूत्र तथा कालकाचार्य–कथा' की एक प्रति उज्जमफोई धर्मशाला, अहमदाबाद के भण्डार में है। अहमदाबाद के एल.डी. इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी के संग्रह में 1396 ई. की एक पाण्डुलिपि 'शान्तिनाथ–चरित' की है। इसे चित्र शैली के आधार पर यू.पी. शाह 1440 ई. की तथा डॉ. मोतीचन्द्र 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की मानते हैं।[19]

कागज पर लिपिबद्ध प्रारम्भिक जैन पाण्डुलिपियों में सर्वोत्तम 'कल्पसूत्र–कालकाचार्य–कथा' की एक पाण्डुलिपि प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम में सुरक्षित है, जो वेश–भूषा के आधार पर 14वीं शताब्दी के अन्तिम चरण की प्रतीत होती है। इसके चित्रों में कालक को सहारा देने वाले साहियों की चेहरों की प्रेरणा 14वीं शताब्दी के फारसी चित्रों से ग्रहण की गई है। जैन चित्रकला के विकास में उल्लेखनीय योगदान देने वाली 'कल्पसूत्र–कालकाचार्य–कथा' की एक अन्य प्रति जैसलमेर–भण्डार में है, जिसका समय 14वीं शताब्दी के अन्तिम पच्चीस वर्ष माना गया है। इसमें लगभग 8.8 सेण्टीमीटर आकार के, तैंतीस चित्र हैं।[20] चित्रों में लाल रंग की पृष्ठभूमि पर सोने व चाँदी के रंगों का उपयोग किया गया है। (चित्र–4) 1404 ई. की एक दिगम्बर जैन पाण्डुलिपि 'आदिपुराण' का उल्लेख डॉ. दोषी ने किया है। कलात्मक दृष्टि से उच्च श्रेणी की एक पाण्डुलिपि 'कल्पसूत्र–कालकाचार्य–कथा' 1415 ई. की है इसका 'कल्पसूत्र' वाला भाग कलकत्ता के 'बिड़ला संग्रह' में तथा 'कालकाचार्य' वाला भाग बम्बई के पी.सी. जैन के संग्रह में है। 1420 ई. में दिगम्बर जैन ग्रन्थ 'महापुराण' चित्रित किया गया, जो इस समय दिगम्बर जैन मंदिर, पुरानी दिल्ली में सुरक्षित है। (चित्र–5,6) 1427 ई. में रचित 'कल्पसूत्र–कालकाचार्य–कथा' की एक पाण्डुलिपि इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन में है।[21] 1439 ई. में सुल्तान महमूद शाह खिलजी के राज्यकाल में रचित 'कल्पसूत्र' की एक चित्रित पाण्डुलिपि माण्डु से प्राप्त हुई है, इस समय वह राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में सुरक्षित है। 1464 ई. के लगभग चित्रित 'कल्पसूत्र' की एक अन्य प्रति ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन में संगृहीत है। 1465 ई. में हुसैन शाह शर्की[22] के राज्यकाल में जौनपुर (उत्तर प्रदेश) में चित्रित 'कल्पसूत्र' राजस्थानी चित्रशैली से प्रभावित उच्चकोटि की पाण्डुलिपि है। इसके चित्रों में कुछ नारी आकृतियों को समकालीन वेशभूषा में दर्षाया गया है।

उपर्युक्त पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त डॉ. कुमार स्वामी ने कुछ अन्य पाण्डुलिपियों का भी उल्लेख किया है। इनमें 1497 ई. में चित्रित 'कल्पसूत्र– कालकसूरि–कथानकम्' भी है। 1566 ई. में चित्रित 'रतनसार' की एक पाण्डुलिपि भी उपलब्ध हुई है। हटमैन के लेख[23] के आधार पर भी कुमार स्वामी ने विभिन्न संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों में संगृहीत 'कल्पसूत्र' की कुछ पाण्डुलिपियों का उल्लेख किया है।

1. फ्रीयर आर्ट गैलरी, वाशिंगटन ।
2. 'फर वोल्कर कुन्दे' का संग्रहालय, बर्लिन।
3. रॉयल लाइब्रेरी, बर्लिन।
4. नाहर संग्रहालय, कलकत्ता ।

5–6 पाटन और जैसेलमेर के अनेक जैन ग्रन्थ भण्डार।

'कल्पसूत्र' की उक्त सभी पाण्डुलिपियों का रचनाकाल डॉ. कुमार स्वामी ने चित्र–शैली के आधार पर 15वीं शताब्दी से पूर्व तथा 15वीं शताब्दी निश्चित किया है–

कागदीय पाण्डुलिपियों के चित्रों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि लेखन और चित्रण के लिए कागज का उपयोग होने से पाण्डुलिपियों की शैली में एक नये युग का सूत्रपात हुआ। 15वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुजराती शैली के पाण्डुलिपिकों व चित्रकारों ने भड़कीली अलंकरण–योजना में तथा रंगीन भूमि पर सुनहरे व रुपहले रंगों से कथा को लिखना व चित्रित करना श्रेष्ठ समझा। कागज के प्रयोग से पत्रों का आकार अपेक्षाकृत वृहद् हो गया। इस कारण चित्रकारों को भी चित्रण के लिए स्थान अधिक मिल गया। यद्यपि चित्रकारों का ध्यान तीर्थंकरादि की जीवन–गाथा के चित्रण पर ही मुख्यतः केन्द्रित था तथापि उन्होंने तत्कालीन स्थापत्य कला का पुनरंकन, वेशभूषा के चित्रण सदृश सादे ढंग से करने का यत्न किया। दृश्य–चित्र को चित्रित करने का उनका ढंग सामान्यतः आलंकारिक था। उनका मुख्य उद्देश्य कथा–प्रसंगों को समुचित रूप से चित्रित करना था। इसके लिए उन्होंने ऐसी किसी नवीन रीति या पद्धति को नहीं अपनाया जो कि उनके कलाक्षेत्र से बाहर थी। यह कला रेखाचित्रण मात्र थी।

इस समय से जैन कलाकारों द्वारा निर्मित चित्रों में अपार शान्ति और विश्रान्ति का भाव परिलक्षित होता है। इनमें तत्कालीन लोक–कला तीर्थंकरों आदि के जीवन–चरित के आधार पर सच्चे अर्थों में अभिव्यक्त हुई है, जैनकला में लोक–कला का सम्मान इसलिए हुआ कि एक तो यह धार्मिक सीमाओं में बँधी रही और दूसरे, यह राजाओं के विलासमय वातावरण से अछूती रही।

गुजरात प्रदेश के दिल्ली के आधीन हो जाने से एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान का मार्ग खुल जाने से 14वीं–15वीं शताब्दी की अपभ्रंश शैली के चित्रों में ईरानी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ– अहमदाबाद से प्राप्त 'कल्पसूत्र' एवं 'कालकाचार्यकथा' के चित्रों में आकृतियाँ ईरानी शैली से प्रभावित हैं। वस्त्र–विन्यास और साज–सज्जा भी ईरानी है। आलेखन सजीव और भावपूर्ण है। अतः नई संस्कृति के संसर्ग का प्रभाव इन चित्रों पर परिलक्षित होता है जिससे कि कला को नया जीवन मिला।[24]

15वीं शताब्दी के उपरान्त मुगल शासन, प्रतिष्ठित हो जाने पर, कलाकारों द्वारा जैन चित्रकला के क्षेत्र में जो कार्य हो रहा था वह मंद पड़ गया। तथापि 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चित्रित जो पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती है, उनके चित्रों में लालित्य और सजीवता है। इस समय के कलाकारों ने समकालीन जीवन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित किया है।

जैन शैली के कागदीय चित्र प्राकृतिक दृश्यमय किनारियों से भी सुसज्जित हैं। किनारियाँ भारतीय चित्रकला में इससे पूर्व इतनी सुसज्जित उपलब्ध नहीं होतीं। इन चित्रों में बेल–बूटों का अंकन अद्वितीय है। 16वीं शताब्दी की पाण्डुलिपियाँ, अपनी सुन्दर किनारियों की सज्जा के लिए विख्यात हैं। इसके नमूने मन्दिरों की सजावट तथा धनी भण्डारगृहों से लिये जाते थे। अलंकरण के उक्त आयामों को इस्लाम की स्थापत्य कला तथा पुस्तकीय चित्रों से अलग नहीं किया जा सकता।

उत्तर काल – 16वीं शताब्दी के पश्चात्

यह वह समय था, जबकि जैन चित्रकला ने मुगल तथा राजपूत चित्रकला का आश्रय लेकर निजस्व विस्मृत कर दिया अर्थात् इस समय के जैन ग्रंथों के चित्रों का निर्माण मुगल एवं राजपूत शैली में हुआ। 17वीं शताब्दी के आरम्भ में छोटे आकार के रंगीन चित्रों द्वारा कला की अभिव्यक्ति करना भारत में, विशेषकर बुन्देलखण्ड, मालवा और दक्षिणी राजस्थान में एक लोकप्रिय विषय बना गया।[25] चित्रकला की कुछ विशेषताएँ, जैसे–रेखाओं में कोणीयता एवं अधर में लटकी परली आँख का फैलाव आदि मुगलों के प्रभाव से पूर्व ही समाप्त हो गयी थीं।

वाचस्पति गैरोला के अनुसार, समयसुन्दर नामक एक जैन मुनि ने 17वीं शती में 'अर्थरत्नावली' के नाम से एक अद्‌भुत ग्रन्थ की रचना की थी, जिसे उन्होंने अकबर को भेंट किया था। इस ग्रन्थ में अकबरयुगीन भित्ति–चित्रों तथा अन्य प्रकार के चित्रों का भी वर्णन किया गया है।

विद्वानों ने समय–समय पर जैन कला के लिए भिन्न–भिन्न विचार व दृष्टिकोण अभिव्यक्त किये हैं। उस युग की कला व सौन्दर्य के मापदण्ड भिन्न थे इसीलिए जैन चित्रों को कलात्मक दृष्टि से अधिक नहीं सराहा गया, लेकिन आज जैन कला में समाहित विशिष्टाओं से पूरित गुणों का अवलोकन किया जाए तो जैन कला में ऐसे तत्त्व विद्यमान हैं जो आज समकालीन आधुनिक कला के समतुल्य हैं। इनकी परम्परा से प्रेरणा प्राप्त कर कलाकार नवीन चित्रों का सृजन कर सकते है।

भारतीय चित्रकला की समस्त शैलियों में 15वीं शताब्दी से पूर्व ताड़पत्र व कागज पर की गई चित्रकारी में जैन पाण्डुलिपियों का प्रथम स्थान हैं। इन पाण्डुलिपि में कागज को ताड़पत्रीय आकार में काटकर उन पर लेखन तथा चित्रण का कार्य किया गया है। किन्तु ताड़पत्र तथा कागज पर बने चित्रों में एक विशेष अन्तर दृष्टिगोचर होता है। ताड़पत्रों पर जो चित्र बनाये गये, स्थानाभाव के कारण उनमें रेखाओं की बारीकी और कलाकार का हस्त–कौशल देखने को मिलता है; किन्तु कागज पर बने चित्रों में, पर्याप्त स्थान होने के कारण सूक्ष्मता एवं प्रतिभा का द्योतन कुछ शिथिल पड़ गया है। इसलिए कागज की सुलभता एवं सुविधा के कारण चित्र रचना में तो अधिकता हुई, किन्तु उनमें कौशल की कमी होने लगी।

शैली और संरचना की दृष्टि से भी जैन पाण्डुलिपियों का अपना विशेष महत्त्व है। अलंकरण तथा अलंकारिक प्राकृतिक चित्रण, सौन्दर्य को चुनौती देती आकृतियाँ, सवा चश्मीय चेहरे, अनुपात से लम्बी और नुकीली नासिका परले गाल की सीमा रेखा से बाहर निकली हुई, ओंठ पतले व एक दूसरे से चिपके हुए, कान लम्बे और छिदे हुए, चिबुक कई भागों में विभक्त या गोल आम की गुठली के समान, कंठ में तीन रेखाएँ, कंधे चौड़े और उठे हुए, कटि अत्यन्त क्षीण, मुड़े हुए हाथ तथा ऐंठी उंगलियाँ, खिलौनों जैसे पशु–पक्षी, विशाल परवल के समान चेहरे से पार जाते चक्षु, धरातल पर अनेक दृश्यों का अंकन, लाल व पीले रंग का अधिक प्रयोग ये सारे गुण जैन पाण्डुलिपि चित्रों को अन्य चित्रों से पृथक करते हैं। इसका चक्षु–चित्रण इसकी विशिष्टता का द्योतक है, जो कि प्रत्येक दर्शक को सहज ही आकर्षित कर लेता है। इसका प्रभाव राजपूत तथा मुगल शैलियों पर भी परिलक्षित हुआ।

रंगों और रेखाओं के संयोजन में जैन कलाकारों की सजगता प्रशंसनीय है। ताड़पत्रों पर अंकित चित्रों में प्रधानतः पीले रंग का उपयोग किया गया है, यद्यपि कहीं–कहीं स्वर्ण रंग को भी संयोजित किया गया है। कागज के चित्रों की पृष्ठभूमि पीले तथा लाल रंग की है। जैन पाण्डुलिपियों के प्रायः सभी चित्र रेखा प्रधान हैं। रेखाएँ अत्यन्त पतली, समान एवं शक्ति सम्पन्न हैं। इनमें अर्धचन्द्राकार रेखाओं का बाहुल्य और मेघ मलिका के समान बहती हुई रेखाओं का सामंजस्य है। ये सशक्त रेखाएँ सुदृढ़ और अपनी मर्यादा एवं साधना को प्रकट करती हैं। संयोजन और गतियुक्त लयात्मक सौष्ठव भी इनमें पाया जाता है।

जैन चित्रकला तथा हिन्दू चित्रकला का विशेष रूप से राजपूत चित्रकला के साथ सम्बन्ध था। गुजरात की श्वेताम्बर कलम से जैन चित्रकला की उत्पत्ति हुई थी। राजपूताना तथा मध्य भारत में सर्वांगीण विकास प्राप्त करने के पश्चात् कालान्तर में वह राजपूत कलम में समा गयी। जैन कलाकार राजपूत कलम की ओर लगभग 15वीं शताब्दी से ही आकर्षित होने लगे थे और बाद में मुगल चित्रकला में ईरानी शिल्प के बढ़ते हुए प्रभाव से वह भी अछूती न रह सकी फलतः राजपूत चित्रकला की बढ़ती हुई समृद्धि में जैन चित्रकला की परिणति हो गयी।

चित्र

चित्र 1: श्री और कामदेव, ओघ–निर्युक्ति, 1060 ई., ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि, जैसलमेर भण्डार

चित्र 2: सरस्वती, ज्ञानसूत्र, 1127 ई., ताड़पत्रीय पाण्डुलिपि, शान्तिनाथ भण्डार, खम्भात

चित्र 3: तीर्थंकर का जन्म, कालकाचार्य–कथा, 1367 ई., कागदीय पाण्डुलिपि, मुनि जिनविजय जी संग्रह

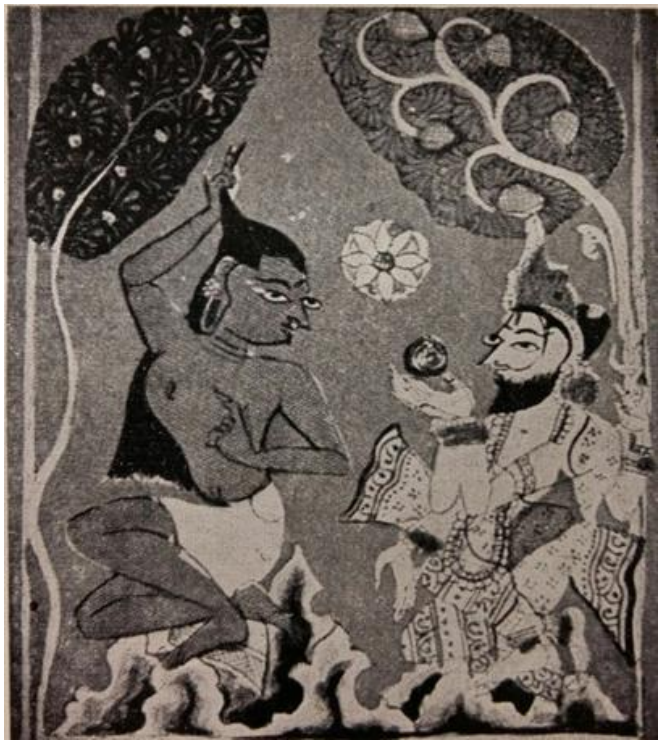

चित्र 4: तीर्थंकर का पंच–मुष्टि लोच, कल्पसूत्र–कालकाचार्य कथा, चौदहवीं शताब्दी का अंतिम भाग, कागदीय पाण्डुलिपि, जैसलमेन भण्डार

चित्र 5: संगीतकार और नर्तक, महापुराण, 1420 ई., कागदीय पाण्डुलिपि, दिगम्बर जैन मन्दिर, दिल्ली

चित्र 6: भरत की सेना का प्रयाण, महापुराण, 1420 ई., कागदीय पाण्डुलिपि, दिगम्बर जैन मन्दिर, दिल्ली

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ए.घोष : द डेवलपमेण्ट ऑफ जैन पेंटिंग, आरटीबुस एशियाई, 1927, पृष्ठ सं. 187
2. डब्ल्यु नॉर्मन ब्राउन : 'अर्ली श्वेताम्बर जैन मिनिएचर', जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट एण्ड लैटर–3, (सं.–1) 1939, पृष्ठ सं. 16–17
3. आनन्द कुमार स्वामी : नोट्स ऑन जैन आर्ट, जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट एण्ड इण्डस्ट्री, (सं.–16) 1914, पृष्ठ सं. 127
4. जे.एस. कुदालकर : द जैन मैन्यूस्क्रिप्ट्स भंडारस ऐट पाटन : ए फाइनल वर्ड ऑन देयर सर्च, एनुअल रिपोर्ट ऑफ द भण्डारक ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट–31, (सं.–1), 1922, पृष्ठ सं. 35–52
5. मोतीचन्द्र : जैन मिनिएचर पेंटिंग्स फ्रॉम वेस्टर्न इण्डिया, अहमदाबाद, 1949, पृष्ठ सं. 2–3
6. कस्तूरचन्द कासलीवाल : जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान, जयपुर, 1967, पृष्ठ सं. 2
7. हीरालाल जैन : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, जयपुर, 2003, पृष्ठ सं. 287
8. कार्ल खण्डालावाला व सरयू दोशी : मिनिएचर पेंटिंग्स, जैन आर्ट एण्ड आर्कीटैक्चर, (भाग–3) दिल्ली, 1975, पृष्ठ सं. 396
9. इॅन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना (वॉल्यूम – 18) पृष्ठ सं. 242
10. कार्ल खण्डालावाला, मोतीचन्द व प्रमोदचन्द : मिसिएचर पेंटिंग्स फ्रॉम द श्री मोतीचन्द खजांची कलैक्शन, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, 1960, पृष्ठ सं. 9
11. आनन्द कुमार स्वामी : जैन पैंटिंग्स, कैटेलॉग ऑफ इण्डियन कलेक्शन्स इन द म्यूजियम ऑफ फाइन आर्ट्स बोस्टन, 1924, पृष्ठ सं. 32
12. रामनाथ : मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास, जयपुर, 1973, पृष्ठ सं. 3
13. ए. घोष : जैन आर्ट एण्ड आर्कीटेक्चर, (भाग–3) दिल्ली, 1975, पृष्ठ सं. 402, चित्र सं.–265

14. सरयू दोषीः ट्वैल्थ सैन्चूरी इल्स्ट्रेटैड मैन्यूस्क्रिप्ट्स फ्रॉम मूडबिद्रि; बुलेटिन ऑफ द प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, (भाग–8) बम्बई, 1962–64, पृष्ठ सं. 29–36
15. अमलानन्द घोष (सम्पादक)ः जैन कला एवं स्थापत्य, (भाग–3) दिल्ली, 1975, पृष्ठ सं. 410
16. रामनाथः मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास, जयपुर, 1973, पृष्ठ सं. 4
17. मुल्कराज आनन्दः जैन मिनिएचर्स, एन एलबम ऑफ इण्डियन पेंटिंग्स, दिल्ली, 1973, पृष्ठ सं. 59–60
18. मोतीचन्द व यू.पी. शाहः न्यू डाक्यूमैन्ट्स ऑफ जैन पेंटिंग्स, श्री महावीर जैन विद्यालय, गोल्डन जुबली वोल्यूम, बम्बई, 1968, पृष्ठ सं. 375
19. मोतीचन्द व यू.पी. शाहः न्यू डाक्यूमैन्ट्स ऑफ जैन पेंटिंग्स, श्री महावीर जैन विद्यालय, गोल्डन जुबली वोल्यूम, बम्बई, 1968, पृष्ठ सं. 13
20. कार्ल खण्डालावाला व सरयू दोषीः मिनिएचर पेंटिंग्स फ्रॉम द श्री मोतीचन्द खजांची कलैक्शन, ललित कला अकादमी, नई दिल्ली, 1960, पृष्ठ सं. 9
21. आनन्द कुमार स्वामीः नोट्स ऑन जैन आर्ट, जर्नल ऑफ इण्डियन आर्ट एण्ड इण्डस्ट्री, 16 (सं.–127) 1914, पृष्ठ सं. 91
22. प्रमोद चन्दः इण्डियन इलस्ट्रेटेड मैन्यूस्क्रिप्ट्स, द टाइम्स ऑफ इण्डिया, ऐन्युअल, 1960, पृष्ठ सं. 45
23. डब्ल्यु हटमैनः मिनियचरेन जम–जिन चरित, बैसलर आरकाइब्स, सं.–4, 1914, पृष्ठ सं. 46–47
24. मोतीचन्द व यू.पी. शाहः न्यू डाक्यूमैण्ट्स ऑफ जैन पेंटिंग्स, बम्बई, 1975, पृष्ठ सं. 9
25. मोतीचन्दः एन इलस्ट्रेटेड सैट ऑफ द अमरूशतक, बुलेटिन ऑफ द प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, (सं.–2) बम्बई, 1951–52, पृष्ठ सं. 2–3